



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2019; 5(1): 558-562
www.allresearchjournal.com
 Received: 15-11-2018
 Accepted: 27-12-2018

मुकेश कुमार महतो
 शोधार्थी, हिन्दी-विभाग,
 ललित नारायण मिथिला
 विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार,
 भारत

जगदीश चन्द्र माथुर के नाटकों में चरित्र-सृष्टि

मुकेश कुमार महतो

सारांश

जगदीशचन्द्र माथुर की चरित्र-सृष्टि का आधार यथार्थ है। यथार्थ इसलिए कि उन्होंने अपने पात्रों के लिए जो नाट्य-संसार निर्मित किया है वह सर्वथा उसके अनुरूप है। उनके नाटकों का मनोमय जगत् इतिहास, जनश्रुति, मिथक और कल्पना पर आधारित है उससे अनुरूप ही उनके पात्र एक प्रकार की वस्तुगत और भावगत विश्वसनीयता को उजागर करते हैं। ऐतिहासिक नाटकों की धारा में सम्भवतः कोणार्क मोड़ का पहला महत्वपूर्ण बिन्दु था, जिसमें इतिहास का यथार्थ-बोध झलकता है। उसी परम्परा में शारदीया में रोमानी वातावरण इन्द्रधनुष की भाँति लहराता दिखाई देता है, किन्तु उसके पात्र यथार्थ जीवन के सुन्दर और असुन्दर, नैतिक और अनैतिक, सत् और असत् के तीखे-मीठे चूँट पीते हैं और समूची निर्मम वास्तविकता में जीवन के मूल स्वर को वाणी देते हैं। जहाँ तक पहला राजा का प्रश्न है, यह कहना अनुचित न होगा कि ऊपर से अयथार्थ लगनेवाली यह कृति मूल मानवीय यथार्थ का कहीं अधिक प्रामाणिक उद्घाटन करती है, किन्तु माथुर का यथार्थ एक ऐसी निर्मित और सर्जनाग्राही मनःस्थिति का यथार्थ है, जिसमें अयथार्थ भी यथार्थ जैसी विश्वसनीयता प्राप्त कर लेता है। माथुर के नाटकीय पात्र प्रसाद की भाँति एकदम आदर्श से उद्भूत नहीं हैं। वे कल्पना के योग से अवश्य रचे गए हैं, पर वे यथार्थ की भावभूमि पर युग के परिवेश में उतारे गए हैं। इसलिए उनमें इतिहास और मिथक भी है और समकालीन मानव का अन्तर्बाह्य जीवन भी प्रच्छन्न रूप से अन्तर्निहित है।

मुख्य-शब्द: नाटकीय, ऐतिहासिक, नाटकों, समकालीन, चरित्र-सृष्टि

प्रस्तावना

माथुर के नाटकीय पात्र युग-भावना के विराट् प्रतिनिधि हैं। 'कोणार्क' में पन्तजी के शब्दों में 'सहनशील विशु तथा विद्रोही धर्मपद में जैसे कला के प्राचीन और नवीन युग मूर्तिमान हो उठे हैं।' दोनों कला की दो युग-प्रवृत्तियों के द्योतक बनकर आए हैं। विशु के लिए कला का रहस्य चयन में है जैसे "उपवन में माली छोट-छोटकर सुन्दर और मनमोहक पौधों और वृक्षों को ही रखता है" 1; किन्तु धर्मपद 'पसीने से नहाते हुए किसान की, कोसों तक धारा के विरुद्ध नौका को खेने वाले मल्लाह की, दिन-दिन-भर कुल्हाड़ी लेकर खटनेवाला लकड़हारे की' चिन्ता न करनेवाली, जीवन के पुरुषार्थ से अलग-थलग पड़ी कला को खेल समझता है। विशु कला को राजनीतिक चेतना और विद्रोही स्वरो से असंपृक्त रखना चाहता है, किन्तु धर्मपद पलायन की अपेक्षा उनमें अन्तर्गत होता है। वह महामात्य द्वारा शिल्पियों पर किए गए अत्याचार, भृत्यों की भूमि के अपहरण, अकाल आदि यथार्थ स्थितियों के प्रति जागरूकता ही प्रकट नहीं करता, अत्याचारी के विरुद्ध संघर्षरत भी होता है। पिता और पुत्र दोनों वर्गीय प्रतिनिधि के रूप में उभरते हैं जो 'शिल्पी के प्रतिशोध' अपने प्राण दे देते हैं। धर्मपद बार-बार जन-शक्ति का जो उद्घोष करता है, वह भी युग-दृष्टि का परिचायक है। शारदीया के केन्द्र में व्यक्ति का, कोणार्क के मूल में समूह का और पहला राजा की अवधारणा में समस्त मानवता के कल्याण का भाव सक्रिय है। पहला राजा में पृथु सारे युग का प्रतिनिधि हैय कवष, मुनि, उर्वी, सूत अपने-अपने वर्गों के सक्रिय सदस्य हैं। पृथु प्रकृति और मानव की विरोधी शक्तियों के केन्द्र में स्थित दिखाई देता है-अपने अस्तित्व और मानव-कल्याण के लिए जूझता हुआ। वह पृथ्वी के दोहन में समाजवादी वितरण तथा श्रेष्ठतर जीवन-पद्धति के स्वप्न साकार करता है। सभ्यता के विकास के प्रारम्भिक युग के साथ-साथ उसके माध्यम से नाटककार ने अपने युग का यथार्थ भी उभारा है। अकेलेपन की पीड़ा, आस्थाहीनता, भय, ऊब, उद्विग्नता तथा तनाव को उभारकर उसने युग-मानव के जीवन को मानवीय अर्थ प्रदान किया है। शुक्राचार्य आदि मुनियों द्वारा उत्पन्न संकट, वर्णसंकर तथा दस्युओं के प्रति घृणा का भाव, कवष का आक्रोशपूर्ण नेतृत्व-सभी युग-सन्दर्भ को उभारते हैं। इसी प्रकार शारदीया व्यक्ति के मौन विद्रोह वाली दृष्टि भी किसी अंश में गाँधीवादी युग की देन कही जा सकती है, किन्तु हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी मानवतावादी दृष्टि नरसिंहराव के चरित्र की सबसे बड़ी उपलब्धि के रूप में सामने आती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि

Corresponding Author:
मुकेश कुमार महतो
 शोधार्थी, हिन्दी-विभाग,
 ललित नारायण मिथिला
 विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार,
 भारत

माथुर पात्र को विचार अथवा समस्या से जोड़ने में विश्वास रखते हैं। कोणार्क की भूमिका में उन्होंने इस सत्य को स्पष्टतः स्वीकार किया है: “यह सही है कि व्यक्तिगत वैषम्य के साथ सामाजिक समस्याओं का गठबन्धन मैंने किया है”।²

यह उक्ति सामाजिक समस्या और व्यक्तिगत वैषम्य—दो तत्त्वों पर बल देती है। इसी के अनुरूप सामाजिक और युग—सन्दर्भ के साथ—साथ व्यक्ति की प्रतिष्ठा भी (जिसे ‘व्यक्तिगत वैषम्य’ कहा गया है) माथुर के नाटकों की मूल प्रेरणा है। इसीलिए उनके पात्र सारे मानवीय सम्बन्धों के बीच व्यक्ति की निजी सत्ता को भी आलोकित करते हैं। उस निजी सत्ता में व्यक्ति की सम्भावनाओं तथा उपलब्धियों के बीच सामाजिक चेतना के बीज निहित दिखाई देते हैं। व्यक्तिवादी चेतना व्यक्ति की अपनी ईहा, आशा—आकांक्षा, जीवन—पद्धति और स्वप्नमयी विचारधारा के प्रति जागरूक होती है। परम्परा के प्रति विद्रोह और नवीन के प्रति आस्था उसे दुहरे संघर्ष के लिए बाध्य करती है। जगदीशचन्द्र माथुर के पात्र भी इन प्रवृत्तियों को आत्मसात् किए हुए हैं। भाव—प्रवणता, कल्पनाशीलता और स्वप्नदर्शिता उनकी मुख्य विशेषताएँ हैं। विशु, धर्मपद, नरसिंहराव, बायजाबाई, पृथु, उर्वी—कुछ ऐसे ही पात्र हैं। वे बौद्धिकता की तुलना में अन्तर्सत्त्यों को विशेष महत्त्व देते हैं। उनका जीवन आन्तरिक दीप्ति और उद्वेग से परिपूर्ण दिखाई देता है। यही कारण है कि नरसिंहराव उदात्त अहं से प्रेरित है और बाह्य परिवेश को अपने अन्तर की आँखों से देखता है, साधारण को भी असाधारण दृष्टि से देखता है; प्रकृति में अपने लिए स्नेह और सौहार्द की खोज करता है और आन्तरिक स्वप्नों और अमूर्त संवेदनों की दुनिया में विचरता है। अन्तस्तल की गहराइयों को कुरेदने वाली इन भावनाओं का तूफान उसकी नियति बन जाता है। माथुर ने ‘कौन जाने भावनाओं के किस तूफान को उसने अपने अन्तस्तल में बाँधकर अपने हाथों में एक अपूर्व कलाशक्ति का संचार पाया?’—प्रश्न में उस तूफान को आँकने का किञ्चित् प्रयास किया है। कागल की बाल्यकाल की स्मृतियाँ, शरदू—पूर्णिमा द्वारा जगाए स्वप्न, प्रतीक्षा, भागने का प्रयत्न, फिर नरसिंह की मृत्यु के झूठे समाचार की यन्त्रणा और किसी की आकांक्षा का दर्शन बायजाबाई को अन्तर्मुखी बना देता है। चाहे नरसिंहराव हो या बायजाबाई, दोनों चरित्र आवेग से परिपूर्ण हैं—किन्तु यह आवेग दबा—दबा—सा है, शर्जेराव की आकांक्षा की लिप्सा और सिन्धिया की शक्ति के नीचे। कोणार्क में कलाकार का यह अन्तर्दहन उन्मुक्त होकर सामने आता है। प्रारम्भ में विशु सारिका के प्रति अपने प्रेम और अपराध भाव को पाषाणी मूर्तियों के बीच छिपाकर रखता है; किन्तु सन्दर्भ के आते ही जैसे वह फूट पड़ता है। और अन्त में जब आहत धर्मपद के साथ उसे अपने सम्बन्ध का ज्ञान होता है तो उसका हृदय एक साथ दो—दो पीड़ाओं से उद्विग्न हो उठता है और मन का तूफान जैसे उसे तोड़ने को उद्यत होता है, “मेरे बन्धु, क्या किसी तरह धर्मा को बचाया नहीं जा सकता? मैं चालुक्य के आगे भीख माँगूंगा, मेरे बेटे के प्राण...”³ किन्तु पुत्र ममता का तिरस्कार कर जब रोकने पर भी युद्ध में चला ही जाता है तो पुत्र के मरणासन्न संकट की सारी पीड़ा पिता के हृदय का आक्रोश बनकर सन्नद्ध हो जाती है और निर्माण विध्वंस में परिणत हो जाता है। मन का यह तूफान सामान्य नहीं सिद्ध होता—सूर्य की प्रतिमा भी एक बार उसके सामने काँप उठती है! भावना का यह आवेग कम मात्रा में ही सही, पृथु में भी है; किन्तु विशु, धर्मपद और नरसिंहराव की तुलना में वह बौद्धिक सन्तुलन से परिपूर्ण है। पृथु का आवेग कर्म, काम, दुविधा और तनावों की विभिन्न दिशाओं में बँट जाता है। वह बाहर से चट्टान की तरह लगता है, किन्तु अर्चना न जाने कहाँ दरार खोजकर जब उसके हृदय में प्रवेश करती है तो वह पुलक—कन्य से रोमांचित हो उठता है और देह के सागर को एक ही अंजुली में भर देता है : “आओ हिलोर उठ रही है। एक ही उठान में तुम्हारी धरती का आलिंगन और गगन की हलचल”⁴ और भी कई स्थलों पर वह

भावना का जीवन जीता है। उदाहरण के लिए. राजा का मखौटा पहनते हुए, भूचंडिका का पीछा करते हुए, बाँध के टूटने पर और सबसे अधिक तब जब वह कर्म, काम में ऊब का अनुभव करता है। चाहे पृथु हो, विशु, धर्मपद या नरसिंहराव—सभी भाव—प्रवण पात्रों के चारित्र्य में अचेतन का तत्त्व प्रमुख दीखता है। एक अभुक्त जीवन, एक अनजानी प्यास उनके जीवन के सूत्रों को संचालित करती है।

भाव के स्तर पर पात्रों द्वारा जिया गया यह जीवन नाटककार की अनुभूति की तीव्रता के द्योतक हैं। प्रतीक तत्त्व की प्रधानता के कारण ‘पहला राजा’ भाव के स्तर को उतना प्रभावित नहीं करता, किन्तु शेष दो नाटक अनुभूति की ही देन हैं। पहला राजा का ‘भोगा हुआ यथार्थ’ बौद्धिक स्तर पर है। उसकी तुलना में शारदीया और कोणार्क में अनुभूति की अपूर्व ऊष्मा है। और यह कला—जगत् का बहुत बड़ा सत्य है कि जब अनुभूति कलाकार के हृदय की गहराई में उतरती है तो कल्पना का उद्भव होता है। माथुर के नाटकीय पात्र अनुभूति के साथ—साथ कल्पना की भी देन हैं। वस्तुतः दोनों के योग से वे पूर्णता प्राप्त करते हैं। शारदीया और कोणार्क में अनुभूति का तत्त्व सर्वत्र मुखर है, उसके सम्बन्ध में चर्चा करना माथुर ने उचित नहीं समझा किन्तु कल्पना के दाय को उन्होंने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। नरसिंहराव के चारित्र्य को किस प्रकार लेखक की उद्दीप्त कल्पना ने उभारा, इस सम्बन्ध में स्वयं उन्होंने लिखा है, श्मन और तन को अँधेरे और घुटन के बन्धन में जकड़ने वाले उस कारागार में इस कलाकार बन्दी को किस अजस्र सौन्दर्य की प्रेरणा के विरामहीन चूँट मिले—इस प्रश्न ने मेरी कल्पना को उत्तेजित किया और तभी नरसिंहराव और उसकी प्रेयसी की काल्पनिक मूर्तियाँ सजीव हो गईं।⁵ कोणार्क में चरित्रों की कल्पना के दो आयाम हैं। एक ओर वे रोमानी, कोमल और सौन्दर्य—प्रेमी हैं। दूसरी ओर ‘कलाकार के मानस में कुंडली मारकर सोये पौरुष नाग की अनाहत फूटकार की कल्पना’ भी उनके माध्यम से उजागर हुई है। पहला राजा के पात्र मिथक के विश्लेषण, प्रतीक तत्त्व और आधुनिक सन्दर्भ से समन्वित होने के नाते कल्पना की विधायिका—शक्ति के परिचायक हैं। कवष, उर्वी आदि के चरित्र कल्पना—शक्ति की ही देन हैं।

कल्पना और अनुभूति का समन्वय तथा युग—सन्दर्भ के प्रति जागरूक चिन्तन माथुर के पात्रों को रचना—वैशिष्ट्य ही नहीं प्रदान करता वरन् यथार्थ और भावमय जीवन तथा आन्तरिक और बाह्य परिवेश के विविध आयामों के बीच उनका संस्कार भी करता है। इस माध्यम से वे परिस्थिति और पात्र के बीच भावना और विचार का ऐसा सम्बन्ध—सूत्र जोड़ते हैं जो पात्र के व्यक्तित्व के अन्तरंग रंगों को उभारता है। इससे वे रसानुभूति में अद्भुत योग देते हैं। कहीं—कहीं तो यह स्थिति अतीन्द्रिय अनुभवों के बीच भी ले जाती है। विशु, धर्मपद, नरसिंहराव कभी—कभी उन्हीं के बीच जीते दिखाई देते हैं। यही पात्र में चरित्र—वैचित्र्य को भी उजागर करता है। इसीलिए भावना में डूबे हुए कई पात्र शक्ति की एक विलक्षण चिनगारी, जीवन की एक विचित्र ज्योति, भावना की एक विशेष भंगिमा और कविता की—सी एक उठान लिये हुए दिखाई देते हैं। इसी आधार पर कुछ पात्रों का स्वरूप गीतिमय हो गया है। ‘यूनानी नाटक की—सी भग्न रागिनी’, सीधे—सच्चे और उदात्त अहं की कर्मठता की त्रासदी उनके माध्यम से सारी नाट्य—कृति में करुण अवसाद छोड़ जाती है।

फिर भी एक सुखद आश्चर्य इस बात का होता है कि जगदीशचन्द्र माथुर के मात्र के पात्र थोथी भावुकता से ग्रस्त द्रव्य को बहुत कम प्रश्रय देते हैं। वे बाह्य द्रव्य से पूरी शक्ति से जुड़ते हैं किन्तु मनोवैज्ञानिक चित्रण के नाम पर आन्तरिक द्रव्य उहापोह उनमें नहीं के बराबर है। वे एक सुविचारित जीवन जीते हैं। इस दृष्टि से उनके पात्र आरोह की दिशा में एक सीधी रेखा में चलते हैं। वे अपने मूलभूत गुणों का अन्त तक निर्वाह करते हैं। बंगयुद्ध से विजयी होकर लौटनेवाला राजा नरसिंहदेव अवश्य

अनुरूप व्यवहार नहीं करता; परन्तु इसे यथार्थ स्थिति की विवशता भी कहा जा सकता है। लेखक ने उसके चारित्र्य की रक्षा करने के लिए भरपूर प्रयत्न किया है और सम्भवतः विशु और धर्मपद के चारित्र्य को उभारने के लिए उसका नौका में जाना अनिवार्य भी था। वस्तुतः वह कोणार्क का मुख्य पात्र भी नहीं है। मुख्य पात्रों में शर्जेराव घाटगे, नरसिंहराव, विशु, धर्मपद, कवष, उर्वी, शुक्राचार्य आदि मुनि, राजराज चालुक्य आद्यन्त एक-से ही लगते हैं। इसका कारण यह है कि माथुर ने अपने पात्रों को सुनिश्चित सकारात्मक या नकारात्मक गुणवत्ता से युक्त किया है—वह चाहे पुरुषार्थ की भावना हो, वैयक्तिक सुख-साधना या सत्ता की आकांक्षा हो या कुछ और सर्वत्र पात्र विरोधी शक्ति के आमने-सामने दिखाई देता है; किन्तु युद्ध बाहर घटित होता है, पात्र के अन्तर्मन में नहीं। अन्तर्मन में तूफान उठता है, किन्तु वह व्यक्ति को झंझोड़ता या तोड़ता नहीं; उसे चट्टान की तरह स्थिर रखता है। कहा जाता है कि महान् चरित्र वाले व्यक्तियों में कोई द्वन्द्व नहीं होता। आदर्शवादी दृष्टि में भी द्वन्द्व के लिए कोई स्थान नहीं होता। माथुर के प्रमुख पात्र यथार्थमूलक आदर्शवाद की देन हैं। उनमें द्वन्द्व होता भी है तो वह मंच पर नहीं आता। उदाहरण के लिए, बायजाबाई ने सिन्धिया से विवाह करते हुए जिस अन्तर्द्वन्द्व को भोगा होगा, वह मंच पर नहीं आता। विशु में कुछ अन्तर्द्वन्द्व है किन्तु वह भी अन्तर्विरोधों में विभक्त नहीं है। पृथु कभी-कभी 'वायदे और चुनौती में किसे वरूँ', 'इन मुखौटों को तुम भी सच मान बैठे' जैसी द्विधापूर्ण स्थितियों में दिखाई देता है। कहीं कर्म और काम, यथार्थ और आदर्श का द्वन्द्व भी उसमें है। इसी प्रकार उर्वी अपने मन के मेघ को दो तालों में झाँकते पाती है और उसे मालूम नहीं कि वह कहाँ बरसे। किन्तु यह द्वन्द्व कथन के स्तर पर है। मन की गहराइयों में है। उनमें द्वन्द्व संकेतित हुआ है, किन्तु वह अन्तर्गर्भित है। हम केवल उसके परिणाम मात्र से अवगत होते हैं। वस्तुतः माथुर के नाटकीय पात्रों में लोकनाट्य की भाँति विकृत व्यक्तित्व के अचेतन मानस की द्विधा नहीं है। उनके पात्र टूटे दर्पण की तरह दो टुकड़ों में विभक्त नहीं हैं। उनके नाटकों में दो प्रकार के पात्रों में द्वन्द्व की कमी दिखाई देती है : एक, जिनकी मानवता मर चुकी है और दूसरे, जो आदर्शवादी हैं। दोनों ही संकल्प के पक्के दिखाई देते हैं और दोनों ही अपने स्वार्थ या आत्मप्रसार से प्रेरित मानव-कल्याण के लिए सन्नद्ध प्रतीत होते हैं। इसीलिए उनमें न पलायन है, न दैन्य; एक सहज स्वीकृति मात्र है। वे हृदय की प्यास लिये हुए हैं, पर उनमें कहीं हृदय-परिवर्तन की आकांक्षा नहीं। इसीलिए वे एक त्रासदी में जीते हैं। हृदय की यह अपरिवर्तनीयता माथुर के पात्रों को कुछ-कुछ सामरस्य की स्थिति की ओर ले जाने लगती है। कोणार्क में अन्ततः विशु एक ऐसी मनःस्थिति में पहुँचता है जहाँ प्रतिशोध के सामने नाश और निर्माण एकाकार हो जाते हैं। इसी प्रकार पहला राजा में पृथु सुख-दुख, हानि-लाभ, जय-पराजय से ऊपर उठकर स्थितप्रज्ञता का परिचय देता है। मानस को उदात्त तत्त्वों की ओर ले जाना, निज की सत्ता के प्रति निरासक्ति, विराग, त्याग और उदारता का भाव विषमताओं के बीच भी सत्पात्रों में मुखर दिखाई देता है, किन्तु सामरस्य का सबसे जीवन्त उदाहरण नरसिंहराव का चरित्र प्रस्तुत करता है। वह माथुर के नाटकों में सबसे अधिक पीड़ित पात्र है; किन्तु वह उसका उदात्तीकरण कर लेता है। वह अप्रीतिकर आवेग के मूल स्रोत के प्रति आसक्ति के भाव को त्यागकर अपनी पीड़ा का जो उपचार खोजता है, वह आधुनिक पाठक/प्रेक्षक को वैचित्र्यपूर्ण अवश्य लग सकता है, किन्तु उसका चरित्र इस बात का प्रमाण है कि कुंठा रूपान्तरित होकर कितने ऊँचे अनुभव तक ले जा सकती है। उसकी असाधारण आकांक्षा जब अतृप्त रहकर विद्रोह को इतना पंगु बना देती है कि वह जूझ नहीं पाता तो वह अन्तर्मुखी हो जाता है तथा अपनी तुष्टि काल्पनिक आदर्शों और मनःसृष्टियों में करने लगता है। वह पिछले सुखद अनुभव के क्षणों में जीता है और

ऊर्ध्वमुखी चेतना ही उसका सम्बल बन जाती है। नरसिंहराव अपने इस सामरस्य में प्रसाद के देवसेना, मल्लिका, स्कन्दगुप्त जैसे पात्रों की याद दिलाता है। अन्तर यही है कि प्रसाद के पात्रों की ऊँचाइयों उनके दार्शनिक चिन्तन पर आधारित होने के कारण एक-दूसरे धरातल पर प्रभावित करती हैं। माथुर नरसिंहराव अथवा किसी अन्य पात्र को उस स्तर तक नहीं उठा सके। वे प्रसाद के निकट आकर भी (उन आरोपों से बचने के लिए जो प्रसाद पर यथार्थवादी आलोचक लगाते रहे) सदा विलग होने के प्रयत्न में कहीं चूक जाते हैं जिससे उनकी उपलब्धि की सीमा बँध जाती है।

अनुभूति और कल्पना के माध्यम से माथुर पात्र के अन्तर्जगत् को इतना महत्त्व देने लगते हैं कि कथावस्तु गौण हो जाती है। मानव और मानवीय सम्बन्धों की प्रधानता के कारण उनके नाटक इसीलिए चरित्र-प्रधान होने को बाध्य हैं। कथावस्तु की क्षीण रेखाओं के बीच पात्रों की जो भावमयी आत्मा उभरती है, वही वास्तव में नाटक को रूपाकार प्रदान करती है। घटना-चक्र के अनाधिक्य में पात्रों का चरित्र नाट्य-स्थितियों पर ही अधिक आश्रित दिखाई देता है। 'कोणार्क' में सारा चारित्र्य दो नाट्य-स्थितियों पर केन्द्रित है—एक, विमान पर कलश का स्थापित न हो सकना और दूसरा, आक्रमण की स्थिति में पिता-पुत्र सम्बन्ध का अभिज्ञान। शारदीया में सारा चारित्र्य षड्यन्त्र के माध्यम से दो विरोधी पक्षों में उभरता है। पहला राजा में नाट्यस्थितियाँ ही चरित्रों के लिए चुनौती लेकर उपस्थित होती हैं। विषयवस्तु का घटनाओं की अपेक्षा कुछ नाट्य-स्थितियों पर आधारित होना पात्रों को कर्म और भावना के स्तर पर उभारता अवश्य है किन्तु कार्य की रेखाएँ बड़ी क्षीण प्रतीत होती हैं। इसी से कहीं ऐसा लगता है कि पात्र रेखाओं में उभरकर रह गए हैं—वे केवल खंड-चित्रों के रूप में प्रभावित करते हैं। यह बात दूसरी है कि वे अपने में सर्वत्र पूर्ण लगते हैं। 'हम लघु अनुपातों में भी सौन्दर्य का दर्शन करते हैं और छोटे परिमाण में भी जीवन पूर्ण हो सकता है' (इन स्मॉल प्रोपोर्शंस वी जस्ट ब्यूटीज सी/एंड इन शॉर्ट मेजर्स लाइफ मे परफेक्ट बी)—कवि की यह उक्ति माथुर के मुख्य नाटकीय पात्रों पर पूरी तरह चरितार्थ होती है। विशु, नरसिंहराव, नरसिंहदेव, धर्मपद, बायजाबाई, कवष, उर्वी—सब मुख्य पात्र छोटे और सामान्य जीवन को भी पूरी ईहा, आस्था, सहज, प्रवृत्तियों और सुदृढ़ कार्य-क्षमताओं के बीच जीते हैं। इसीलिए माथुर के नाटकों में घटनाएँ साधारण हैं, पर पात्र असाधारण। वे अपने काव्यात्मक संस्कार के कारण अपने चारित्र्य की व्यंजना करने में समर्थ दीखते हैं और उस हिमखंड का आभास देते हैं जो सागर के जल के अन्दर भी उतना ही है जितना उसके ऊपर। पात्र नाटक में और मंच पर केवल रेखाओं में भले ही उभरें किन्तु चेतना में वे बहुत गहराई तक प्रवेश करते हैं। वास्तव में ये पात्र नाटककार के मानस बिम्ब हैं—वे अनुभूति के अंग स्वरूप हैं। वे जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों का द्योतन ही नहीं करते प्रेक्षक/पाठक के मन पर अपनी छवि भी उकेरते हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण माथुर के नाटकों में विशिष्ट ही नहीं साधारण-से-साधारण पात्र भी अपने विशिष्ट रंगों में उभरते हैं। उदाहरण के लिए, शारदीया की रहीमन, सरनाबाई, सरदार जिन्सेवाले, कोणार्क के सौम्यश्रीदत्त, शैवालिक तथा पहला राजा के सूत-मागध, सुनीथा, दासी आदि को लिया जा सकता है। बायजाबाई को गाना सिखाने के लिए पिता द्वारा स्वार्थ-साधन के लिए नियुक्त नर्तकी रहीमन नाटकीय क्रिया-व्यापार की दृष्टि से एक सामान्य पात्र है, किन्तु उसका गाना और संवाद भविष्य का पूर्वाभास देने में अपूर्व योग देते हैं। वह बायजा की मनःस्थिति और उसकी नियति के खिलवाड़ में रहीमन तुरूप के पत्ते का काम देती है। शर्जेराव घाटगे को वह 'गुल खिलने' की सूचना ही नहीं देती, उसी की भाँति विडम्बनापूर्ण व्यवहार भी करती है; 'आप जाँय सरकार। बाई साहब को मैं सँभाल लँगी। (शर्जेराव का प्रस्थान) आपको आराम की जरूरत है बाई साहब! आपके

आराम का भी बन्दोबस्त करूँगीय आपका मन—बहलाव भी। यह भजन आपको बहुत पसन्द आया था न? लीजिए सुनिए—निसि दिन बरसत नैन हमारे (क्रमशः अन्धकार...बायजाबाई के नयनों में आँसू भरे हैं)। रहीमन के आन्तरिक विरोध में सरनाबाई का चरित्र बाँदी के रूप में भी विशिष्टता प्राप्त कर लेता है; बायजाबाई को लेकर भागने के प्रयत्न में उसकी स्वामिभक्ति एक त्रासदी बनकर रह जाती है। इसी प्रकार गढ़पति, सरदार जिन्सेवाले के चरित्र समस्त मानवीय भावनाओं के साथ अंकित हुए हैं। कोणार्क का सौम्य श्रीदत्त सूत्रवाही पात्र होने पर भी मन्दिर का नाट्याचार्य होने के नाते उसकी संगीतक 'गीताभास्करम्' के अभिनय की चर्चा में विशु का पूर्व प्रणय—प्रसंग उद्घाटित होता है। इसी प्रकार हम उसे एक बार फिर एक दूसरे रहस्योद्घाटन के अवसर पर नाटक के अन्त में भी विशु के निकट पाते हैं और उसकी अन्तरंगता विशु के भावनाजगत् को अद्भुत दीप्ति प्रदान करती है। पहला राजा में सबसे अकिंचन दासी है; किन्तु नाटक में वह भी अपनी निश्चित भूमिका निभाती है।

सूत्रवाही चरित्र कथावस्तु के विकास में सहायक होते हैं। इनके अतिरिक्त कई पूरक पात्र भी माथुर के नाटकों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दासी का, सुनीथा का, रहीमन शर्जराव का, सरनाबाई बायजाबाई का और सौम्य श्रीदत्त विशु का सहायक पात्र है। पर ये पूरक पात्र भी विभिन्न प्रवृत्तियों से युक्त हैं। पहला राजा में कवष, शुक्राचार्य, अत्रि, अर्चना जैसे पूरक पात्र भी दूसरों के साथ अपना युग बनाते हैं। कोणार्क में सौम्य श्रीदत्त, शैवालिक और शारदीया में रहीमन, सरनाबाई आदि पात्र पूरक पात्र होते हुए भी अपनी अलग छवि रखते हैं। सौम्य श्रीदत्त के माध्यम से विशु का प्रणय—प्रसंग उद्घाटित होता है और रहीमन का गीत और संवाद बायजाबाई की मनःस्थिति को ही नहीं उसकी त्रासदी को भी उजागर करती है। इस प्रकार ये पात्र साधन के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

माथुर के पात्र प्रायः दो वर्गों में विभाजित दिखाई देते हैं। दोनों के अपने-अपने शिविर हैं और उनके प्रति दृढ़ आस्था भी। एक ही शिविर के पात्रों में परस्पर प्रवृत्तिगत वैषम्य नहीं है। वे अनन्य भाव से नायक/खलनायक का अनुसरण करते हैं। किन्तु इसी के साथ यह भी विचारणीय है कि नाटककार अपनी सारी शक्तियों तथा उपकरणों को केवल नायक के चित्रण में नहीं लगा देता। न नायक का चरित्र उतनी ऊँचाइयों को छूता है कि वह सामान्य से विशिष्ट लगे और न सामान्य पात्र इतना साधारण दीखता है कि उसकी भूमिका नगण्य प्रतीत हो। इसीलिए विशु और धर्मपद अपने संघर्ष में अकेले नहीं लगते। नरसिंहराव अपने संघर्ष में अकेला है, पर वह इतना ऊपर नहीं उठता कि परिस्थिति में वैशिष्ट्य को द्योतित कर सके। वस्तुतः खलनायक शर्जराव उस पर हावी दीखता है और उसकी आत्मतुषि स्वस्थ मानव की प्रतिक्रिया नहीं प्रकट करती। यहाँ भी लगता है कि नायक पात्रों के बीच का ही पात्र है—शास्त्रीय और स्वच्छन्दतावादी नाटकों के नायकों जैसी भारी-भरकम गुरुता को लादने के प्रयत्न से नाटककार ने मुक्ति पाई है। मनोविज्ञान, जनतन्त्र तथा समाजवाद के इस युग में यह दृष्टि प्रभावित करती है। खल—पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण उनकी विरोधी तथा आक्रामक भूमिका को कुछ हद तक तकसम्मत बना देता है। व्यक्ति का अपना अहं, स्वार्थ, काम—भावना, सत्ता का आग्रह, लोभ खल—पात्रों को असत् की ओर उन्मुख करता है। उनके प्रति घृणा का भाव जागृत होता है, किन्तु उनकी दुर्बलताएँ मानवीय लगती हैं। शर्जराव घाटगे में सत्ता की और दौलतराव सिन्धिया में देह की प्यास उनसे सब कुछ करवाती है। इसी प्रकार शुक्राचार्य, गर्ग तथा अत्रि मुनि अहं, वर्ण और वंश—गौरव, वर्ण—भेद आदि परम्परागत संस्कारों से ग्रस्त हैं। राजराज चालुक्य महत्त्वाकांक्षी होने के नाते कर है और शैवालिक, महेन्द्र वर्मन् आदि उसकी दासता का मात्र निर्वाह करते हैं। माथुर के पात्र सत् और असत् के वर्गीय प्रतिनिधि अवश्य हैं किन्तु वे अपने स्वरूप में मानवीय हैं, देव और दानव नहीं।

इसके साथ ही ऐसे पात्र भी माथुर के नाटकों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो नाटक में चर्चित मात्र हैं, पर मंच पर उपस्थित नहीं होते। इनमें कोणार्क की सारिका उल्लेखनीय है। विशु की पूर्व—प्रेयसी और धर्मपद की दिवंगता माता के रूप में उसका जो बिम्ब उभारा गया है, वह सारी नाटकीय संवेदना का आधार बनता है। नाटककार ने बड़े कौशल के साथ सूर्य और कुन्ती के प्रेम—प्रसंग के द्वारा उसके समर्पित प्रेम और विशु के उद्दाम यौवन की भूल को बड़े सुन्दर ढंग से उभारा है। इसके साथ ही उसके रूप और प्रभाव की गहरी रेखाएँ भी अंकित की हैं, 'वह वन की कली थी। जंगली शबर जाति की कन्या। चट्टान को फोड़कर बहनेवाली निर्द्वंद्व, निष्कलुष जलधारा/वह मद—भरे पावस—सी उन्मत्त थी, पुष्पावृत्त कामिनी—तरु—सी सम्पन्न' ⁶। यही सारिका विशु की प्रेरणा रही है और धर्मपद के लिए शक्ति की प्रतीक : 'उसने मुझे शक्ति दी जिसके बल पर नन्हा बीज धरती को फोड़कर नए जीवन का प्रतीक बनता है' ⁷। धर्मपद और विशु दोनों के लिए वह किरण थी : धर्मपद 'आर्य, मेरी आँखों के सामने जो पर्दा पड़ा है उसे न उठाइए। उस पर मेरी माँ की मधुर, गम्भीर, दर्द—भरी मूर्ति दिख रही है। ...और वहाँ मानो सूरज की अन्तिम किरणें पड़ रही हैं। किरणों के बीच माँ भली लगती है! विशु/मन्दिरों का निर्माण करते—करते कभी—कभी सहसा मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा जाता था।...तभी तुम्हारी माँ की मनोरम और तेजस्वी मूर्ति की झलक मिलती और उन किरणों से मुझे प्रकाश मिलता' ⁸। विशु की कला और धर्मपद के शौर्य में उसी का बिम्ब रूपायित होता है। सम्भवतः जीवित पात्र के रूप में न होने पर भी उसे नाटक का सबसे सशक्त और जीवन्त पात्र कहा जा सकता है। 'शारदीया' में गोविन्दराव काले भी इसी कोटि का पात्र है। उसकी ही प्रेरणा नरसिंहराव में हिन्दू—मुस्लिम एकता की भावना में प्रतिफलित हुई है। वह नाटक में पात्र की अपेक्षा विचार के रूप में विद्यमान दिखाई देता है। उसकी चर्चा विरोध में की गई है: 'सच कहता हूँ गोविन्दराव किसी सपने की दुनिया में रहते हैं। आँखें बन्द करके सोचते हैं—हिन्दू और मुसलमान मिल जाँ, निजाम और मराठे एक हो जाँ' ⁹; किन्तु नाटक का उदात्त कथ्य उसी की विचारधारा पर आधारित है। पहला राजा में भूचंडिका इसी प्रकार नेपथ्य की एक प्रबल शक्ति के रूप में उल्लिखित है, जिसके विरुद्ध सारा विरोध खड़ा किया जाता है। मुनि धरती की अनुर्वरता का एकमात्र कारण उसे ही घोषित करते हैं: 'प्रजा की पीड़ा, हमारी चिन्ता, आपका क्रोध तीनों का एक ही लक्ष्य है राजन्, एक ही कारण—भूचंडिका! धरती की दानवी' ¹⁰ वह नंगी नारी मूर्ति भी है, देवी भी; चेतन नारी—पात्र भी और जड़ धरती भी। सारा संघर्ष उस पर केन्द्रित होता है, किन्तु मंच पर वह कहीं नहीं दिखाई देती है। हाँ, उर्वी उसका प्रतीकत्व अवश्य धारण कर लेती है।

इसी सन्दर्भ में प्रतीक चरित्रों तथा ऐतिहासिक पात्रों का वैशिष्ट्य भी विचारणीय है। कोणार्क और शारदीया में कई पात्र ऐतिहासिक हैं जिनमें नरसिंहदेव, सौम्य/श्रीदत्त, राजराज चालुक्य, दौलतराव सिन्धिया, शर्जराव घाटगे, बायजाबाई, फडके, जिन्सेवाले आदि का पात्र प्रमुख हैं। किन्तु जैसा कहा जा चुका है, इतिहास माथुर के पात्रों के लिए सूत्र प्रस्तुत करता है, रूप नहीं। कल्पना के सामने ऐतिहासिक सत्य की खोज निरर्थक हो जाती है; किन्तु कल्पना भी ऐतिहासिक सूत्र की दिशा में ही उड़ान भरती है। कई पात्रों में इतिहास और कल्पना का अद्भुत समन्वय हुआ है। उनमें नरसिंहदेव, बायजाबाई आदि उल्लेखनीय हैं। पात्र न पूरी तौर पर ऐतिहासिक हैं और न काल्पनिक। कुछ किंवदन्ती और मिथक के बीच से उभरते हैं। कोणार्क और पहला राजा के कुछ पात्र इसी कोटि में आते हैं। इसके साथ ही ऐसे पात्र भी उल्लेखनीय हैं जो विशुद्ध लेखकीय कल्पना की देन हैं। रहीमन, सरनाबाई, दासी, अर्चना, उर्वी आदि उन्हीं के अन्तर्गत आते हैं। उनका नायक, नायिका, खलनायक, विदूषक के रूप में विभाजन भी नहीं किया जा सका। सूत्रधार नट—नटी भी परम्परागत नहीं हैं।

जहाँ तक प्रतीक-पात्रों का प्रश्न है, वे पहला राजा में ही मुख्यतः आए हैं। प्रतीकों का आश्रय नाटक में प्रायः दुहरी अर्थ-योजना के लिए बड़ा उपयोगी माना जाने लगा है। उसमें प्रतीक तत्त्व मिथक और समसामयिक यथार्थ के साम्य पर आधारित है। प्रस्तुत के माध्यम से अप्रस्तुत की व्यंजना अर्थात् निहितार्थ को उजागर करने की क्षमता के कारण पहला राजा के पात्र प्रतीक का निर्वाह करते हैं। वस्तुतः अन्योक्ति के नाते यह प्रतीक तत्त्व केवल विशिष्ट कथा-सन्दर्भ में ही सार्थक होता है। इस नाटक में पृथु, कवष, उर्वी, मुनि, सुनीथा, वेन आदि पात्र आधुनिक सन्दर्भ में व्याख्यायित होते हैं। उदाहरण के लिए, पृथु को जवाहरलाल नेहरू का प्रतीक कहा जा सकता है। मुनि उनके मन्त्रिमंडल का, वेन पिछली राज्य व्यवस्था का और उर्वी धरती का प्रतीक है। किन्तु इस स्थूल प्रतीकार्थ के अतिरिक्त एक अमूर्त, वैचारिक प्रत्ययमूलक प्रतीकात्मकता भी उभरती है। इस प्रकार पृथु प्रकृति के विरुद्ध जूझते मानवीय पुरुषार्थ का प्रतीक भी बन जाता है। इसी प्रकार कवष एक भिन्न स्तर पर जन-नेता के रूप में पृथु के ही पुरुषार्थ का एक खंड है। उर्वी कर्म और अर्चना काम की प्रेरणा है। पुरुषार्थ के लिए दोनों ही आधारस्वरूप हैं। यह वैचारिक प्रतीक तत्त्व निश्चयतः पहला राजा के पात्रों को व्यापक सत्ता प्रदान करता है। उनके कारण पात्र अनेक अर्थ-संकेतों और व्यंजनाओं से सुशोभित हुए हैं और उनके व्यक्तित्व की अन्तर्निहित छायाएँ कई स्तरों पर उभरकर सामने आती हैं। पर यह प्रतीकात्मकता आरोपित-सी लगती है, वह स्वयं में व्यंजक नहीं है। इसे वही ग्रहण कर पाएगा जो उस युग को समझता हो। कोणार्क का विशु अवश्य कालातीत प्रतीक बनने की क्षमता रखता है। सारी प्रतीक तत्त्व योजना के बावजूद लगता है कि माथुर कोई बड़ी बात नहीं कहने जा रहे हैं। उसमें किसी सुबद्ध दर्शन की खोज करना सम्भव नहीं-इतना ही सच है कि वे एक दर्शन नहीं बल्कि देखने की एक दृष्टि देते हैं।

निष्कर्ष

जगदीशचन्द्र माथुर के नाटकों में पात्रों का बाहुल्य नहीं है। उनमें प्रमुख पात्रों की संख्या अधिक नहीं है। सहायक और सूत्रवाही पात्रों का चयन भी मितव्ययिता के साथ हुआ है। यही मितव्ययिता स्त्री-पात्रों के सम्बन्ध में भी दिखाई देती है। कोणार्क में कोई स्त्री पात्र नहीं, शारदीया में बायजाबाई, रहीमन और सरनाबाई तीन स्त्री पात्र आए हैं और पहला राजा में भी उर्वी, अर्चना और दासी। स्त्री-पात्रों के सम्बन्ध में यह भी विचारणीय है कि वे अपने व्यक्तित्व में प्रसाद की देवसेना, मालविका, छलना या मागधी की बिरादरी में नहीं आतीं। बायजा, उर्वी और अर्चना इन तीन मुख्य पात्रों को ही लीजिए, उनमें वह भावुकता नहीं जिसे रोमान कहा जा सके। इसके विपरीत रोमान उनके पुरुष प्रेमियों में दिखाई देता है-विशु और नरसिंहराव में शायद पृथु में भी।

संदर्भ

1. बोलते क्षण, वही, पृ. 35
2. वही, पृ. 14
3. वही, पृ. 76
4. पहला राजा, पृ. 53
5. शारदीया, पृ. 5
6. वही, पृ. 33
7. वही, पृ. 72
8. वही, पृ. 73-74
9. वही, पृ. 40
10. वही, पृ. 68